दैनिक जागरण

सृजनात्मकता के लिए हमें अपनी ही गलतियों से सीख लेनी होगी

भ्रम फैलाती राजनीति

कांग्रेस के वरिष्ठ नेता दिग्विजय सिंह ने बेगूसराय से भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के प्रत्याशी कन्हैया कुमार की तारीफ में यह कहकर महागठबंधन के विरोधाभास को नए सिरे से उजागर करने का ही काम किया है कि राष्ट्रीय जनता दल ने इस युवा नेता के खिलाफ उम्मीदवार उतारकर बहुत बड़ी गलती की। उनके मुताबिक कन्हैया कुमार उनके पक्ष में चुनाव प्रचार करने भोपाल भी आएंगे। उनकी मानें तो उन्होंने इसकी पैरवी भी की थी कि राजद कन्हैया कुमार के खिलाफ अपना उम्मीदवार न उतारे, लेकिन बात बनी नहीं। वह सही ही कह रहे होंगे, लेकिन यह समझना कठिन है कि इस बात को उजागर करके वह यह क्यों रेखांकित कर रहे कि बिहार में महागठबंधन में सब कुछ ठीक नहीं? दिग्विजय सिंह के इस बयान के पहले राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के प्रमुख शरद पवार का यह बयान सुर्खियां बना था कि भाजपा के नेतृत्व वाले राजग के स्पष्ट बहुमत पाने की संभावना कम है और ऐसे में ममता बनर्जी, चंद्रबाबू नायडू और मायावती प्रधानमंत्री पद के लिए बेहतर विकल्प होंगे। इसी के साथ उन्होंने कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी को पीएम पद की दौड़ से बाहर भी बता दिया था। क्या इसकी जरूरत थी? क्या महाराष्ट्र में भी महागठबंधन के बीच सब कुछ ठीक नहीं। जो भी हो, शरद पवार के इस बयान ने शत्रुघ्न सिन्हा के उस कथन की याद दिला दी जिसमें उन्होंने मायावती के साथ ही अखिलेश यादव को भी पीएम पद के योग्य बताया था। यह उन्होंने तब कहा था जब वह समाजवादी पार्टी से चुनाव मैदान में उतरीं पत्नी पूनम सिन्हा का प्रचार करने लखनऊ आए थे। वह खुद कांग्रेस के प्रत्याशी हैं। शत्रुघ्न सिन्हा के बयान को उनकी मजबूरी कहा जा सकता है, लेकिन आखिर दिग्विजय सिंह और शरद पवार महागठबंधन की दरारें चौड़ी करने का काम क्यों कर रहे हैं?

दिग्विजय सिंह और शरद पवार के बयान इसी बात के परिचायक हैं कि किसी गठबंधन को महागठबंधन का नाम देने मात्र से सब कुछ सही नहीं हो जाता। ऐसे बयान यह भी बताते हैं कि महागठबंधन समान विचारधारा वाले दलों का मिलन नहीं, बल्कि मजबूरी का साथ है। यह ठीक नहीं कि गठबंधन की राजनीति मजबूरी और मौकापरस्ती का पर्याय बन गई है। महागठबंधन में वे अनेक दल शामिल हैं जो एक समय कांग्रेस विरोध की राजनीति का परिचायक थे। आज जब उन्हें कांग्रेस से परहेज नहीं तो फिर इसका क्या मतलब कि वे अलग दल के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रहें? सवाल यह भी है कि महागठबंधन बनने के बाद उसमें शामिल दलों ने अपने घोषणा पत्र अलग-अलग क्यों जारी किए? क्या यह समय की मांग नहीं थी कि महागठबंधन का अपना कोई साझा घोषणा पत्र अथवा न्यूनतम साझा कार्यक्रम जारी होता? एक समय गठबंधन राजनीति के तहत न्यूनतम साझा कार्यक्रम आवश्यक समझा जाता था, लेकिन अब उसकी जरूरत ही नहीं समझी जा रही है। इससे यही झलकता है कि आम जनता को अहमियत नहीं दी जा रही है। अलग-अलग राजनीतिक दलों के विचारों में भिन्नता होना स्वाभाविक है, लेकिन यदि इस भिन्नता के नाम पर वे एक-दूसरे का विरोध करते दिखेंगे तो इससे आम जनता के बीच भ्रम ही फैलेगा।

शिकायत की सियासत

लोकसभा चुनाव में पश्चिम बंगाल में वह सब हो रहा है जो पहले नहीं हुआ है। वह है शिकायत की सियासत। इस वक्त सभी राजनीतिक पार्टियां एक दूसरे के प्रत्याशी एवं नेताओं के खिलाफ चुनाव आयोग में शिकायत करने में जुटी हैं। इसी से सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि पिछले 45 दिनों में चुनाव आयोग के पास विभिन्न दलों ने प्रतिद्वंद्वी के खिलाफ आचार संहिता उल्लंघन का सैकड़ों मामले दर्ज कराए हैं। बंगाल में लोकसभा चुनाव का प्रथम चरण का मतदान 11, दूसरा 18 एवं तीसरा 23 अप्रैल को संपन्न हो चुका है और चौथा चरण 29 अप्रैल को होना है। जिस रफ्तार से शिकायतें हो रही हैं यह आने वाले वक्त में नया रिकार्ड बना सकता है। क्योंकि जैसे-जैसे चुनाव करीब आता जा रहा है, वैसे-वैसे शिकायत की संख्या बढ़ती जा रही है। एक भी ऐसी प्रमुख पार्टी नहीं है जिसने एक-दूसरे के खिलाफ शिकायत न की हो। शिकायतों की फेहरिस्त में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से लेकर तृणमूल प्रमुख ममता बनर्जी तक सभी दलों के कई नेता एवं प्रत्याशी शामिल हैं। नदिया जिले के भाजपा अध्यक्ष को तो तृणमूल प्रत्याशी के खिलाफ अमर्यादित टिप्पणी को लेकर चुनाव आयोग ने 48 घंटे के लिए चुनाव प्रचार पर पाबंदी लगा दी है। यही नहीं सियासी दल के नेता एक दूसरे की शिकायत तो कर ही रहे हैं, लेकिन तृणमूल कांग्रेस तो विशेष चुनाव पर्यवेक्षक अजय वी नायक के खिलाफ भी शिकायत से पीछे नहीं हट रही है। वहीं भाजपा ने मुख्य चुनाव अधिकारी आरिज आफताब को लेकर शिकायत की थी। शिकायतें चुनावी आचार संहिता के उल्लंघन एवं बदजुबानी से लेकर हमले तक की हो रही हैं। आखिर अचानक शिकायतों की बाढ़ कैसे आ गई? क्या शिकायत के जरिए प्रतिद्वंद्वी प्रत्याशी एवं नेताओं का मनोबल तोड़ने की रणनीति तो नहीं है? यह सही है कि सियासत में शुचिता और वाणी पर नियंत्रण होना चाहिए, क्योंकि जन प्रतिनिधि लोगों का रोल मॉडल होते हैं, यदि वही बदजुबानी और आचार संहिता का उल्लंघन करेंगे तो जनता को उससे क्या संदेश मिलेगा?

जाति आखिर जाती क्यों नहीं?

गिरीश्वर मिश्र

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज देश में चारों ओर अधिकांश नेताओं का जनाधार पार्टी या विचारधारा से कहीं अधिक जातियों और उपजातियों पर टिका दिखता है

भारतीय समाज कई खांचों में विभाजित है। इसी में एक अहम विभाजक रेखा जाति भी है। जाति का सीधा अर्थ समूह, विशेषता या गुण होता है। इसी अर्थ में फूल, पशु, पक्षी, अनाज, फल तथा सब्जी आदि की जाति जानी और पहचानी जाती है। जाति एक तरह की भेदक विशेषता का बोधक है। हालांकि जाति यानी समूह की सीमा भी टूटती है जब कभी उसमें बदलाव लाया जाता है। जैसे आम की कलम भी होती है और 'कलमी आम' भी मिलते हैं। स्वाद की दृष्टि से उनमें नई विशेषता आ जाती है। ऐसे ही सामाजिक जीवन में भी एक स्तर पर भेद करना स्वाभाविक रूप से मिलता है और विश्व में हर जगह सामाजिक श्रेणियां पाई जाती हैं। जब हम भारत की सामाजिक दुनिया में प्रवेश करते हैं तो यहां हमारे समक्ष जाति एक जटिल और गतिशील सामाजिक सत्य के रूप में उपस्थित दिखती है जिसके अब तक संवैधानिक और रूढ़िगत कई-कई पाठ और संस्करण किए जा चुके हैं।

आज भारत के सामाजिक और राजनीतिक माहौल में 'जाति' एक बड़ा ही संवेदनशील मुद्दा बन चुका है, जिसकी सहायता से सियासी दलों द्वारा चुनावी जंग जीतने की रणनीति बनाई और बिगाड़ी जा रही है। इसमें उनको सफलता भी मिल रही है और दिनोंदिन राजनीति के समीकरण बैठाने में इसकी निर्णायक भूमिका हावी होती जा रही है। अंततः सरकार के निर्माण और उसके संचालन में कामयाबी भी जातिगत संतुलन के आधार पर ही मिलती प्रतीत हो रही है। यह तब है जब जाति के उन्मूलन के लिए आधुनिक काल में स्वतंत्रता मिलने के पहले से ही नेताओं और अनेक समाज सुधारकों ने पुरजोर कोशिश की थी और समाज को जाति-प्रथा की जंजीरों से मुक्त करने के स्वप्न को आकार दिया।

हालांकि देखा जाए तो ऐतिहासिक दृष्टि से जाति की व्यवस्था समाज को कई वर्गों में बांटती रही है। ये वर्ग अधिकारों की मर्यादा में कुछ इस तरह बंधे कि ऊंची जाति के हिस्से में संपत्ति, प्रतिष्ठा, सम्मान और योग्यता जन्मजात रूप में अधिक पहुंच गई। फलतः एक प्रकार की असमानता समाज के स्वभाव में प्राकृतिक रूप से निबद्ध हो गई। इस विषमता से उबरने की चेष्टा ही बेकार थी, क्योंकि यह एक विकल्पहीन व्यवस्था के रूप में अंगीकार की गई थी।

जन्म से जुड़े होने के कारण जाति की सदस्यता आजीवन स्थिर रहने वाली ही नहीं थी, बल्कि समय के साथ वह वंशानुगत हो गई और उससे मुक्ति ही संभव न थी। जाति ने खान-पान, शादी-ब्याह, पूजा-पाठ, उठना-बैठना, तीज-त्योहार यानी जीवन के सभी महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रतिबंधक असर डाला। सामाजिक दूरियों को इस तरह नियमित किया जाने लगा कि जाति के अंदर समानता बढ़े और दूसरी अन्य जातियों से अधिकतम भिन्नता को तीव्र किया जाए। इस तरह समाज में जाति-भेद की दीवारों को सुदृढ़ किया जाने लगा।

वास्तव में जाति की पूर्ववर्ती वर्ण व्यवस्था जो व्यवसाय और कार्य पर टिकी थी, वह मात्र नाम-संकेत थी, पर बाद के दिनों में उसे जाति में तब्दील करना एक बड़े सामाजिक परिवर्तन का सबब बन गया और उसने विषमता के ऐसे बीज बो दिए जिसका देश में विष-वृक्ष समय के साथ बढ़ता ही गया। अंग्रेजों ने हिंदू धर्म की पहचान को जातियों से जोड़कर उन्हें सूचीबद्ध किया और वही आज भी मूल आधार है। जाति की समस्या का आज भी कोई समुचित समाधान नहीं मिल रहा है। संशय इतना है कि जो जाति की आलोचना करते हैं और उसे मिटाने का संकल्प लेते हैं वे ही जाति को बनाए रखने की मुहिम भी चलाते हैं।

यह सत्य है कि जाति-भेद के कारण सदियों से जाति के पायदान पर नीचे स्थित जातियों का भयंकर शोषण होता रहा और वे अकारण द्वेष के लक्ष्य भी बने। इस अमानवीय स्थिति को बदलने के लिए ऐसी पीड़ित जातियों को चिह्नित किया गया और वैधानिक रूप से अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ी जाति, अन्य पिछड़ी जाति, दलित, महा दलित और आर्थिक रूप से पिछड़े (ईडब्ल्यूएस) की श्रेणियां बनाई गईं। इन्हें आरक्षण और अन्य सहायता के द्वारा समयबद्ध ढंग से समर्थ बनाने और मुख्यधारा में लाने की कोशिश चलती रही। साथ ही जाति का स्वभाव भी बदला। जाति और उससे जुड़ी सुविधा का रिश्ता कुछ ऐसा बना कि अनेक क्षेत्रों में जाति-बदल के भीषण आंदोलन चलते रहे और समय-समय पर राज्यों तथा केंद्र की सरकारों ने आरक्षण योग्य जातियों की अपनी-अपनी सूची बनाईं। इस तरह जाति की सत्ता राजनीति की सत्ता से जुड़ने लगी। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आज देश में चारों ओर अधिकांश नेताओं का जनाधार पार्टी या विचारधारा से कहीं अधिक जातियों और उपजातियों पर टिका दिखता है और वे स्वयं को उस समुदाय के प्रति सीमित और संकुचित ढंग से समर्पित किए रहते हैं।

अवधेश राजपूत

जाति की अमोघ राजनीतिक ताकत मुख्यतः दो स्रोतों से आती है। जाति की पहचान उस जाति-समूह के सदस्यों को एक भिन्न मानसिक धरातल पर एकजुट करती है। यह समूह के साथ जुड़े सदस्यों को तीव्र भावनात्मक प्रवाह से ऊर्जावान करती है। उस क्षण व्यक्ति अपनी निजी सत्ता विस्मृत कर मानसिक स्तर पर समूह के साथ एकाकार महसूस करने लगता है। समूह की अपील वशीकरण मंत्र जैसा काम करते हुए विचार-बिगुल बजाती है और लोग उस प्रत्याशी का बेहिचक समर्थन करने को सहजता से तैयार हो जाते हैं, पर इससे भी ज्यादा प्रभावी हैं जाति से जुड़े दृश्य और अदृश्य प्रलोभन जो भोली-भाली जनता को मनाने-मनवाने के लिए नेताओं द्वारा अपनी बिरादरी के लोगों को परोसे जाते हैं। एक हद तक तुष्टीकरण ही राजनीति की मुख्य भाषा बन चुकी है। अपने को 'जन्मजात ओबीसी' सिद्ध करने का तर्क गले नहीं उतरता। जातिबद्ध बना रहना और जाति-समापन का व्रत लेना साथ-साथ नहीं चल सकते। यह तो पीछे की ओर लौटने जैसी बात है।

भारतीय राजनीति आज मुद्दों और सरोकारों से अधिक छोटे प्रपंचों में फंसती जा रही है। जाति, जुमले और जुबानी जंग के सहारे हवा में तलवारें भांजते कई नेताओं की वाचालता क्षुब्ध करने वाली है। इक्कीसवीं सदी में समर्थ भारत का सपना देखने वालों को समता और समानता का व्यापक दृष्टिकोण अपनाना होगा। विषमता दूर करते हुए जाति मुक्त समाज बनाना ही भविष्य की राह बन सकता है।

(लेखक जाने-माने शिक्षाविद् हैं)

response@jagran.com

संभावनाओं के द्वार खोलता पर्यटन

जीएन वाजपेयी

पर्यटन ऐसा उद्योग है जो अपने साथ कई अन्य उद्योगों को भी लाभ पहुंचाता है। यह देश की आर्थिक दशा-दिशा बदल सकता है

इस साल जनवरी से मार्च के बीच प्रयागराज में कुंभ का सफल आयोजन हुआ। इसमें 15 करोड़ से अधिक लोगों ने शिरकत की। औसतन 25 लाख लोग इसमें रोजाना आए और यहां तक कि कुछ अवसरों पर एक दिन में दो करोड़ लोग भी पहुंचे। महज पांच वर्ग किलोमीटर के दायरे में इतने बड़े आयोजन के लिए बंदोबस्त करना हतप्रभ करने वाला है। इतना बड़ा आयोजन बिना किसी अप्रिय घटना के संपन्न हो जाता है तो इसे कुशल प्रबंधन की मिसाल ही कहा जा सकता है। हालांकि मुख्यधारा के मीडिया में न तो कुंभ से जुड़ी व्यवस्था और न ही प्रशासनिक प्रबंधन को उतनी तवज्जो मिली और न ही कुंभ के कारण इस शहर और उत्तर प्रदेश की अर्थव्यवस्था को मिलने वाले फायदों पर ही उतना गौर किया गया। शायद इसकी एक वजह इसमें कौतूहल का अभाव हो, क्योंकि अक्सर नकारात्मक बातें ही सुर्खियां बटोर पाती हैं। फिर भी अपने रूप-स्वरूप और व्यापकता को देखते हुए दुनिया भर में इसे लेकर शोध-अध्ययन किए जा रहे हैं। इसी कड़ी में हॉर्वर्ड विश्वविद्यालय इस पर पहले से ही काम शुरू कर चुका है।

हालांकि इस आलेख का मकसद इतने बेहतर रूप से संपन्न हुए आयोजन की मीडिया रिपोर्टिंग की समीक्षा नहीं, बल्कि ऐसे सुसंगठित आयोजनों के आर्थिक प्रभावों की पड़ताल करना है। फिर भी मैं इतना जरूर कहूंगा कि इस आयोजन से जुड़ा प्रशासनिक अमला बहुत सराहना का पात्र है। यह एक बहुत बड़ा आर्थिक अवसर भी था और अनुभवजन्य साक्ष्य यही दर्शाते भी हैं कि इस मौके को खुले हाथों से भुनाया भी गया। व्यक्तिगत एवं संस्थागत दोनों मोर्चों पर इससे आर्थिक लाभ पहुंचा। मसलन होटलों, विमानन कंपनियों से लेकर ट्रैवल एजेंसियों, दुकानदारों और यहां तक कि रिक्शा वाले भी इससे लाभान्वित हुए। शुरुआती पखवाड़े के भीतर कुंभ का दौरा करके लौटे मेरे एक मित्र ने वहां राह चलती बातों का जिक्र करते हुए बताया कि लोग कह रहे थे कि ऐसे आयोजन अक्सर होने चाहिए ताकि समय-समय पर और कमाई हो सके। यह शायद कुंभ का ही असर था कि मांग की तुलना में आपूर्ति तंग होने के चलते साइकिल रिक्शा चालकों ने भी एक-एक दिन में 3,000 से 5,000 रुपये तक की कमाई की।

वैश्विक स्तर पर पर्यटन एक बड़ा उद्योग है। यह कई क्षेत्रों में अवसर सृजित करता है। अर्थव्यवस्था को तेजी से बढ़ने में मदद करता है। बड़े पैमाने पर नौकरियां प्रदान करता है। इसे प्रमुख उदीयमान क्षेत्रों में गिना जाता है और वर्ष 2014 में वैश्विक अर्थव्यवस्था में पर्यटन की हिस्सेदारी 9.4 प्रतिशत थी। वहीं मॉरीशस, सिंगापुर और दुबई जैसी जगहों पर जीडीपी में योगदान के लिहाज से पर्यटन उद्योग दूसरे स्थान पर रहा। पर्यटन के विस्तार के साथ ही होटल एवं रेस्टोरेंट, विमानन, रेल, वाहन, मनोरंजन और हस्तशिल्प जैसे उद्योगों को भी बहुत फायदा पहुंचता है। अनुभवों के आधार पर तमाम शोध दर्शाते हैं कि पर्यटन में रोजगार सृजन का अनुपात 4:1 का है। इसका अर्थ यही है कि चार पर्यटक एक व्यक्ति को रोजगार प्रदान करते हैं। इसकी एक और विशेषता यह है कि पर्यटन से महिलाओं के लिए भी रोजगार के तमाम अवसरों की खिड़की खुलती है जो तमाम पारिवारिक बंदिशों के चलते काम के लिए बाहर नहीं जा सकतीं। वे तमाम स्थानीय महत्व के उत्पादों के माध्यम से आजीविका चला सकती हैं।

भारत एक प्राचीन सभ्यता है। यहां विविधता भरी वनस्पतियों से यहां के प्राकृतिक सौंदर्य की छटा बस देखते ही बनती है। तमाम संस्कृतियों और जायकों का भी यहां संगम है। अफसोस की बात यही है कि भारत में पर्यटन की संभावनाओं को उचित रूप से नहीं भुनाया जा सका है। जबकि हमारी उप-महाद्वीपीय भौगोलिक अवस्था दुनिया की सबसे ऊंची पर्वत शृंखलाओं से लेकर समंदर के नायाब किनारों, दुनिया में सबसे ज्यादा वर्षा वाली जगह से लेकर रेगिस्तान जैसे इलाकों को समाहित किए हुए है, लेकिन इन्हें अपेक्षित रूप से भुनाया नहीं गया। भारत में सिंगापुर और दुबई से भी कम सैलानी आते हैं। वहीं भारतीय पर्यटन उद्योग में दो करोड़ से अधिक रोजगार सृजन की क्षमता है और यह जीडीपी में अतिरिक्त दो प्रतिशत का इजाफा कर सकता है।

मौजूदा केंद्र सरकार ने इस दिशा में गंभीर रूप से ध्यान केंद्रित किया है। उसने अंतरराष्ट्रीय स्तर के 50 पर्यटन स्थल विकसित करने की दिशा में पहल की है। विश्वस्तरीय सुविधाएं विकसित करने के लिए दिल्ली के लाल किले जैसे स्थलों को निजी क्षेत्रों को लीज पर दिया जा रहा है। पर्यटन वीजा भी बेहद सुगम हो गया है। देश में पर्यटकों की आवाजाही में वृद्धि के रूप में पर्यटन उद्योग में प्रगति स्पष्ट रूप से नजर भी आ रही है। वर्ष 2017 में भारत में 1.4 करोड़ विदेशी पर्यटक आए जबकि 2014 में यही आंकड़ा 76.8 लाख था। इस लिहाज से भारत में पर्यटन के मोर्चे पर 14 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई जो वैश्विक औसत 6.8 प्रतिशत और एशियाई औसत 5.7 प्रतिशत से काफी अधिक है। हालांकि घरेलू पर्यटन की वृद्धि महज 2.3 प्रतिशत रही। यह बढ़िया बुनियादी ढांचे के अभाव और लागत के मोर्चे पर नाकामी को दर्शाता है। भारत के किसी पर्यटन स्थल की तुलना में अक्सर थाईलैंड या मलेशिया जाकर सैर-सपाटा करना भारतीयों के लिए कहीं अधिक किफायती होने के साथ ज्यादा आरामदेह और सुकून भरा साबित होता है। भारत में पर्यटन के मामले में विदेशी पर्यटकों की बढ़ती आवक एक अच्छा संकेत जरूर है, लेकिन हम अभी भी इस उद्योग की पूरी संभावनाओं को भुना नहीं पा रहे हैं।

इसके लिए 'अतुल्य भारत' और 'अतिथि देवो भवः' जैसे स्लोगनों को व्यापक योजनाओं के साथ सिरे चढ़ाना होगा। इसके तहत बड़ी संख्या में किफायती होटलों का निर्माण, मनोरंजन के लिए भी नई किस्म के विकल्प तैयार करने होंगे। म्यूजियम और आर्ट गैलरी बनानी होंगी। विरासत स्थलों की दशा सुधारनी होगी। कनेक्टिविटी बढ़ानी होगी। गाइड्स, म्यूजियम एवं आर्ट गैलरी कर्मचारियों और सुरक्षाकर्मियों को प्रशिक्षित करना होगा। केंद्र एवं राज्य सरकारों के अलावा निजी क्षेत्र के बीच बेहतर जुड़ाव की जरूरत है। इन सबसे बढ़कर पर्यटकों की सुरक्षा सुनिश्चित करनी होगी। पर्यटक ऐसी सुखद स्मृतियों के साथ वापस लौटें कि वे देर-सबेर उस स्थान पर दोबारा आने की योजना बनाएं। यह अच्छा संकेत है कि मौजूदा सरकार ने 2014 में ही इसकी संभावनाएं पहचानकर पांच वर्षों के दौरान इस मोर्चे पर काफी काम किया है। इस दिशा में निरंतर प्रयासों से पर्यटन क्षेत्र में अगले पांच वर्षों में 50 लाख से अधिक नई नौकरियां सृजित होने की उम्मीद है।

(लेखक एलआइसी एवं सेबी के पूर्व चेयरमैन हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

सम्मान

सम्मान पाने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि हम भी दूसरों का सम्मान करें। जब हम दूसरों का सम्मान करते हैं तो हमारे शिष्टाचार से प्रभावित होकर वे भी हमारा सम्मान करते हैं। हमारे व्यवहार से हमारी एक छवि बनती है और समाज इसी छवि से हमें जानता-पहचानता है। समाज में जिस मनुष्य की जैसी छवि बनती है, लोग उसे उसी रूप में याद करते हैं। कोई व्यक्ति कितना ही अमीर या रूपवान क्यों न हो, लेकिन यदि उसके व्यवहार में आत्मीयता नहीं है तो उसके अमीर और रूपवान होने के कोई मायने नहीं हैं। जब हम दूसरों का सम्मान नहीं करेंगे तो वे हमें घमंडी एवं अभिमानी समझेंगे और हमारा सम्मान भी नहीं करेंगे। लोग आपका आकलन धन-दौलत या सुंदरता देखकर नहीं करते, बल्कि मनुष्य अपने व्यवहार कुशलता से ही जाना जाता हैं। महात्मा गांधी कहते हैं कि सच्ची दौलत सोना-चांदी नहीं, बल्कि स्वयं मनुष्य ही है। मनुष्य को धन की खोज धरती के भीतर नहीं, अपने हृदय में ही करनी है।

सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह समाज के नियमों का पालन करे। सामने वाले व्यक्ति से ऐसा व्यवहार करे, जिससे आत्मीयता की भावना जागृत हो। हम जैसा व्यवहार दूसरे के साथ करेंगे, वैसा ही व्यवहार दूसरा भी हमारे साथ करेंगे, इसलिए दूसरे से सम्मान की चाह करने से पहले हमें उसका सम्मान करना चाहिए। हमारे अच्छे व्यवहार से जहां सामने वाला प्रभावित होता है, वहीं हमें भी भीतर से खुशी मिलती है। मनुष्य अपनी ही नजरों में उठता और गिरता है। जब मनुष्य अपनी नजरों में गिरता है तो उसकी अंतरआत्मा उसे नकारती है और जब मनुष्य अपनी नजरों में उठता है तो उसकी अंतरआत्मा उसका हौसला बढ़ाती है।

मनुष्य की वाणी उसके लिए वरदान एवं अभिशाप दोनों है। मधुर वचन औषधि के समान है और कटु वचन तीर की तरह हृदय को भेदता है। मनुष्य को सदैव यही प्रयास करना चाहिए कि वह अपने व्यवहार से समाज में आदर्श स्थापित करे। ऐसा करने के लिए उसे अपनी सोच को विकसित करना चाहिए। जब हम अपनी सोच को विकसित करते हैं तो हमारा ज्ञान का दायरा बढ़ता है। तब हमें यह महसूस होता है कि हर मनुष्य हमारी ही तरह है और तब हम नर में नारायण को खोज लेते हैं।

आचार्य अनिल वत्स

किसके हाथ में है रिमोट का कंट्रोल

फिर से

अक्सर हम घर में टीवी के रिमोट के लिए झगड़ते रहते हैं, लेकिन भूल जाते हैं कि इस पर कंट्रोल तो किसी और का है

टीवी रूम में रिमोट के लिए हर घर में उठापटक मची रहती है। घर के पुरुष के पास रिमोट न हो तो मानो उनकी सत्ता ही उनसे छीन ली गई हो। ऐसे में घर की स्त्री भी किसी न किसी बहाने आंख दिखाकर रिमोट पर कब्जा करती दिख ही जाती है। बच्चे तो रिमोट पर अपना हक ही जमा बैठते हैं और नहीं मिले तो कोहराम मचा देते हैं? लेकिन कल मैं हतप्रभ रह गई। हुआ यूं कि मेरे टाट स्काई का रिमोट ढंग से काम नहीं कर रहा था। इंस्टाल करने वाले बंदे ने टीवी और सेटअप बॉक्स के रिमोट को पेयर बना दिया था। हम एक ही रिमोट से काम चला रहे थे, लेकिन अचानक ही यह गठबंधन टूट गया। कहां तो चुनावी मौसम में गठबंधन हो रहे हैं, लेकिन मेरे रिमोट का टूट गया। कई महीनों से टीवी का रिमोट अलमारी में बंद पड़ा ऑक्सीजन की तलाश में था तो उसे नसीब हो गई, लेकिन केवल ऑन-ऑफ का मसला नहीं था, टीवी का रिमोट शत्रुघ्न सिन्हा की तरह हर पल नाराज रहने लगा, कभी चैनल न बदले जाएं और कभी वोल्यूम बंद हो जाए। गूगल के सारे प्रयोग भी फेल हो गए। आखिर मोहल्ले में स्थित टाट स्काई के डीलर से सहायता की अपील की। उसने दोनों रिमोट को पास बुलाया, बातचीत कराने की कोशिश की, लेकिन सफलता हाथ नहीं लगी। डीलर ने हाथ झटक लिए। अब सोचा कि टाटा स्काई हेल्प का सहारा लिया जाए। हेल्प का फोन लग गया और बंदे से बात होने लगी।

बंदा बोल रहा था कि मैं चेक करके बताता हूं, अरे रिमोट तो मेरे हाथ में है, भला तू कैसे चेक कर सकेगा! खैर दिमाग को शांत किया। उसने भी दोनों रिमोट का मेल-मिलाप कराने का अथक प्रयास किया, लेकिन नतीजा सिफर ही रहा। अब बोला कि मैंने आपकी शिकायत नोट कर ली है और शीघ्र ही आपको एक फोन आएगा और समस्या सुलझ जाएगी, लेकिन बुद्धिजीवी चुपचाप नहीं बैठ सकता, उसे लगता है कि मैं क्यों नहीं ठीक कर सकता! इस बार मैंने यू-ट्यूब खोली और एक वीडियो मिल गया, कैसे पेयर बनाएं। दिखाया जा रहा था कि दोनों रिमोट को आमने-सामने बिठाएं फिर यह बटन दबाएं और फिर यह। लो अब बन गया पेयर। सप्तपदी की रस्म पूरी हुई, लेकिन मेरे रिमोट को यह पसंद नहीं आया और उसने फिर नकार दिया। मैं भी हार-थककर चुप हो गई। कुछ देर में ही एक मैसेज आया कि आपकी समस्या निवारण के लिए शीघ्र ही आपसे फोन पर वार्ता की जाएगी। कुल मिलाकर दो-तीन घंटे बाद आदत से लाचार मैंने जब रिमोट का मुआयना किया तो वह चल उठा, मैं भी उछलकर बैठ गई कि अरे यह चल गया! मैंने सोचा कि मेरे प्रयोग से ही चला होगा, लेकिन तभी फोन के मैसेज पर निगाह पड़ी, उसमें मैसेज था कि आपकी समस्या का निवारण कर दिया गया है। लो कर लो बात रिमोट मेरा, लेकिन संचालित हो रहा है टाटा स्काई के दफ्तर से! अक्सर हम घर में टीवी के रिमोट के लिए झगड़ते रहते हैं, लेकिन भूल जाते हैं कि इस पर कंट्रोल तो किसी और का है। न जाने कितना कुछ है दुनिया में जिनके लिए हम हर पल लड़ते हैं, लेकिन हमारे हाथ खाली हैं! दरअसल हम रंगमंच की कठपुतली हैं जी, डोर तो विधाता के पास ही है।

(साभार : अजित गुप्ता का कोना ब्लॉग से साभार)

मेलबाक्स

वंशवाद से बाहर सोचना होगा

अपने लेख 'विकल्पहीनता के हालात बनाती कांग्रेस' में डॉ. एके वर्मा ने सही लिखा है कि यदि कांग्रेस अपनी हठधर्मिता के चलते वंशवाद पर अड़ी रही तो राष्ट्रीय राजनीति में जनता विकल्पहीन हो जाएगी। कांग्रेस में वंशवाद की नींव तभी पड़ गई थी जब इंदिरा गांधी के असमय निधन के कारण राजीव गांधी को प्रधानमंत्री बना दिया गया। उन्हें राजनीति का कोई अनुभव नहीं था, लेकिन सहानुभूति की लहर में कांग्रेस ने बंपर जीत हासिल की थी। किंतु अगले ही चुनाव में कांग्रेस सत्ता से बाहर हो गई। जब तक कांग्रेस सत्ता में रही परिवार के निर्देशन में सरकार चलती रही। राजनीति में जनता के सामने तभी विकल्प पेश करने की आवश्यकता पड़ती है जब आप सत्ता से बाहर होते हैं। वर्ष 2014 में भाजपा ने नरेंद्र मोदी के रूप में सशक्त व दमदार विकल्प जनता के सामने रखा और पहली बार भाजपा अपने बलबूते सत्ता में आई। आज उसी स्थिति में कांग्रेस है, लेकिन वह आज भी परिवार से विकल्प की प्रतीक्षा कर रही है। वास्तव में इंदिरा गांधी के बाद कांग्रेस को कोई सक्षम नेतृत्व नहीं मिला। बेशक वे वंशवाद की परंपरा से आई थीं किंतु वे अदम्य साहस की प्रतिमूर्ति थीं। हालांकि कांग्रेस ने नरसिम्हा राव व डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में पंद्रह साल सरकार चलाई, लेकिन तब भी परिवार का प्रभुत्व हावी था। सत्ता तो दूर की बात है आज कांग्रेस कोई सक्षम विकल्प देने की स्थिति में भी नहीं है। वर्ष 2014 के आम चुनाव में राहुल कोई चमत्कार नहीं कर सके थे और कांग्रेस 44 सीटों पर सिमट गई थी। असल में कांग्रेस में परिवार से इतर किसी भी सक्षम नेतृत्व को उभरने ही नहीं दिया गया। यही कारण है कि कांग्रेस आज चौराहे पर हताश खड़ी है। यदि कांग्रेस को राजनीति में बने रहना है तो उसे पार्टी में एक सक्षम नेतृत्व तलाशना ही होगा। जनता के सामने एक दमदार विकल्प पेश कर करना होगा, लेकिन इसके लिए उसे परिवार के मोहजाल से बाहर भी झांकना होगा।

रणजीत वर्मा, फरीदाबाद

जागरूक होना बेहद जरूरी

'मतदान आपका अधिकार है, मतदान जरूर करें।' आम चुनाव में शतप्रतिशत मतदान के लिए मतदाताओं को प्रेरित व जागरूक करने के अभियान चल रहे हैं, जो प्रजातंत्र की मजबूती के लिए बहुत ही जरूरी है। फिर भी अब तक के तीन चरणों में मतदान का प्रतिशत अपेक्षाकृत कम होना चिंताजनक है। आज चौथे चरण में क्या हालात रहेंगे यह देखना होगा। दरअसल चुनिंदा जनप्रतिनिधि चुनाव में जीतने के बाद जनता के प्रति उदासीन हो जाते हैं। अपने दायित्व के निर्वाहन में कोताही बरतते हैं। इस कारण जनता का मतदान के प्रति मोहभंग होना वाजिब कारण है। अब जनप्रतिनिधियों को भी सजग, जागरूक होने की जरूरत है। आखिर ताली तो दोनों हाथों से ही बजती है।

hemahariupadhyay@gmail.com

सम्मान देने की संस्कृति बची रहनी चाहिए

कांग्रेस नेत्री प्रियंका गांधी ने कहा है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी अपने चुनावी भाषण के पचास प्रतिशत हिस्से में नेहरू-गांधी परिवार को ही निशाना बनाते रहते हैं। सही कहती हैं प्रियंका गांधी, परंतु इनके भ्राता राहुल गांधी क्या करते रहते हैं? वे तो शायद इससे भी अधिक समय तक 'चौकीदार चोर है' ही आलापते रहते हैं। सभी जानते हैं कि वे किसे 'चोर' से परिभाषित करते हैं। स्वयं प्रियंका भी तो नरेंद्र मोदी को ही कोसती रहती हैं। याद है 2014 का चुनावी संग्राम जब मोदी ने प्रियंका को शिष्टाचारवश 'बेटी' कहा था तो प्रियंका ने तुरंत प्रतिक्रिया में कहा था कि वे किसी अन्य की बेटी नहीं, बल्कि केवल अपने पिता की बेटी हैं। प्रियंका द्वारा राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण 'बेटी' के पवित्र संबोधन को अस्वीकार कर देना कहां तक न्यायोचित था! प्रियंका की माताजी व संप्रग अध्यक्षा सोनिया गांधी ने जब नरेंद्र मोदी को 'हत्यारा' और 'जहर की खेती करने वाला' तथा मौत का सौदागर तक कहा था तब भी नरेंद्र मोदी ने एक बार भी इसका गिला नहीं किया, लेकिन नरेंद्र मोदी ने राजनीतिक भाषण में कांग्रेस और नेहरू-गांधी परिवार पर कुछ टीका-टिप्पणी की तो अब प्रियंका को बहुत बुरा लग रहा है। यहां अटल बिहारी वाजपेयी की एक बात याद आती है- 'सरकार आएंगी-जाएंगी, पर देश बचा रहना चाहिए।' ऐसी ही एक बात यहां प्रासंगिक प्रतीत होती है कि प्रधानमंत्री बदलेंगे, सरकारें बदलेंगी, लेकिन चुनाव के कारण दूसरे को सम्मान देने की भारतीय संस्कृति बची रहनी चाहिए।

spgoel.jhm@gmail.com

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।